International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 11 Issue 1, Jan-Feb, 2023, Impact Factor: 7.326

अष्टादश विद्या तथा आचार्यपरम्परा

पंकज शर्मा

सहायक प्राध्यापक (संस्कृत), राजीव गाँधी शासकीय स्नातकोत्तर, महाविद्यालय, मन्दसौर (म.प्र.)458001

ज्ञानार्थक 'विद्' धातु से क्यप् व स्त्रीत्व विवक्षा में 'टाप्' प्रत्यय करने से निष्पन्न 'विद्या' पद का अर्थ ज्ञान, अवगम, शिक्षाव विज्ञान इत्यादि होता है।[1]समुच्चय रूप से तात्पर्य यह है कि जो ज्ञान का साधन हो अथवा जिसके द्वारा अज्ञानरूपी बन्धन से मुक्ति हो सके, वह विद्या है। उपनिषद् वचन के अनुसार- जिससे अमरता की प्राप्ति हो सके, उसको विद्या कहते है-**'विद्ययाऽमृतमश्नुते'**[2]अतः उपनिषद्वचन में भी विद्या के तृतीयान्त होने से उसकी साधनता ही सूचित होती है। उपर्युक्त ज्ञान, विज्ञान इत्यादि विद्या के पर्यायरूप हैं। मुक्ति का एकमात्र साधन ज्ञान है। जिसे विभिन्न दर्शनाचार्य आत्मज्ञान, ब्रह्मसाक्षात्कार, विवेकज्ञान, निर्वाण, निःश्रेयसाधिगम इत्यादि शब्दों से अभिहित करते हैं।

ज्ञान के बिना मुक्ति सम्भव नहीं-***ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः।*** इस प्रकार विद्या अथवा ज्ञान का सतत् अन्वेषण मेधावान् पुरुषों द्वारा किया गया। जिन्हें कहीं मनीषी, कहीं मन्त्रद्रष्टा व कहीं ऋषि कहा गया। जिन्होंनें सर्वप्रथम मन्त्रों का साक्षात्कार कर सम्पूर्ण ज्ञान राशि को वेद के रूप में एकत्र सन्निहित किया। यह ज्ञान राशि वेदत्रयी - ऋग्वेद,यजुष् व सामवेद के रूप में विभाजित हुई। इसके अनन्तर अर्वाचीन होने से व वैदिक अवधारणा के अनुरूप होने से *'अथर्ववेद'* भी चतुर्थ वेद के रूप में स्थापित हुआ। इस वेदचतुष्टयी समष्टि के अनन्तर ही वाक्यार्थबोध के सुस्पष्ट अवगमनार्थ अन्य समस्त विद्याएँ निःसरित हुई। जो वेदचतुष्टयी को मिलाकर समस्त संस्कृत साहित्य के आकर के रूप में चतुर्दश विद्याओं के रूप में परिगणित हैं। किन्तु कहीं-कहीं चार उपवेद को मिलाकर 'अष्टादशविद्या' का भी ग्रहण हुआ है।

आचार्य मधुसूदन सरस्वती ने अपने ग्रन्थ ***प्रस्थानभेद***में अष्टादशविद्याओं का उल्लेख किया है तथा इनको **'त्रयी'** शब्द से कहा गया है।[3]इन्हीं विद्याओं से सम्पूर्ण संस्कृत-वाङ्मय का ग्रहण हो जाता है। छान्दोग्योपनिषद् के सातवें अध्याय में सनत्कुमार के नारद के प्रति दिये गये उपदेश में इनके साथ ही अन्य प्रकार की भी विद्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है।[4]तथापि सर्वसम्मतेन चतुर्दश विद्याओं का ही ग्रहण होता है।

मुण्डकोपनिषद् मेंविद्या का द्विविध विभाजन कथित है - पराविद्या एवं अपराविद्या।[5]पराविद्या के रूप में ब्रह्मविद्या(अक्षरब्रह्म) को कहा गया है।[6]जिसमें एकमात्र ब्रह्म का ज्ञान हो जाने से अन्यत्र ज्ञानार्थ संचार करने की आवश्यकता नहीं है।भारतीय संस्कृति के सन्दर्भ में परा विद्या से तात्पर्य स्वयं को जानने (आत्मज्ञान) या परम सत्य को जानने से है। द्वितीया - अपरा विद्या में ही चतुर्दश विद्याओं का समाहार हो जाता है। चतुर्दश विद्याओं का उल्लेख उपनिषद् पुराण, स्मृति इत्यादि ग्रन्थों में प्राप्त होता है। जिसमें याज्ञवल्क्यस्मृति में चौदह विद्याओं का स्पष्टतः उल्लेख प्राप्त होता है।[7]वहीं आचार्य कौटिल्य के***अर्थशास्त्र***में चतुर्विध विद्याओं का उल्लेख प्राप्त होता है।

---

[1] *संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश,वामन शिवराम आप्टे,पृ.-935*

[2] *ईशावास्योपनिषद्र - 11*

[3] *क.***एता एव चतुर्भिरूपवेदैः सहिता अष्टादशविद्या भवन्ति। आयुर्वेदो, धनुर्वेदो गान्धर्ववेदोऽर्थशास्त्रं चेति चत्वार उपवेदाः।** - *प्रस्थानभेद, पृ.-2*
ख. **एवमष्टादश विद्यास्त्रयीशब्देनोक्ताः।** - *प्रस्थानभेद, पृ.-22*

[4]**ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदं पित्र्यं राशिं दैवं निधिं वाकोवाक्यमेकायनं देवविद्यां ब्रह्मविद्यां भूतविद्यां क्षत्रविद्यां नक्षत्रविद्यां सर्पदेवजनविद्यामेतद्भगवोऽध्येमि।।**-*छान्दोग्योपनिषद् -7.1.2, पृ.-672*

[5]**द्वे विद्ये वेदितव्ये इति ह स्म यद् ब्रह्मविदो वदन्ति परा चैवापरा च।।** - *मुण्डकोपनिषद्-1.1.4*

[6]**अथ परा यया तदक्षरमधिगम्यते।**- *मुण्डकोपनिषद्-1.1.5*

[7]**पुराणन्यायमीमांसाधर्मशास्त्राङ्गमिश्रिताः।वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश।।**- *याज्ञवल्क्यस्मृति, आचाराध्याय -3*

जिसमें आन्वीक्षकी, त्रयी, वार्ता व दण्डनीति हैं।[8]त्रयी के अन्तर्गत वेदत्रयी का ग्रहण कर लेते हैं तथा आन्वीक्षकी के अन्तर्गत - सांख्य, योग व लोकायत का। इस प्रकार आचार्य कौटिल्य कुल मिलाकर आठ प्रकार की विद्याओं का उल्लेख करते हैं।

इसी प्रकार मुण्डकोपनिषद् में भी अपरा विद्या के रूप में विषय प्रधानता की दृष्टि से दस विद्याओं का ही उल्लेख किया गया है।[9]इसके अनन्तर विद्या के लिए पौराणिक संदर्भ की ओर दृष्टिपात करने से हमें 'अग्निपुराण' में सभी विद्याओं का वर्णन प्राप्त होता है। आचार्य बलदेव उपाध्याय के मतानुसार अग्निपुराण को यदि समस्त भारतीय विद्याओं का विश्वकोश कहें तो किसी प्रकार अत्युक्ति न होगी।[10]जैसा कि अग्निपुराण में उक्त है।[11]

अतः इन अष्टादश विद्याओं का संक्षेप में क्रमशः वर्णन इस प्रकार हैं -

1. ऋग्वेद–

अपने प्रातिभ चक्षु से साक्षात्कृतधर्मा ऋषियों के द्वारा अनुभूत अध्यात्मशास्त्र के तत्त्वों की विशाल व विमल शब्दराशि का ही नाम ' वेद' है। जिसे श्रुति, निगम, आगम, त्रयी, छन्दस्, आम्नाय व स्वाध्याय इत्यादि पर्यायवाचक शब्दों से भी कहा जाता है। लौकिक वस्तुओं के साक्षात्कार के लिए जिस प्रकार नेत्र की उपयोगिता है, उसी प्रकार अलौकिक तत्त्वों के रहस्य को जानने के लिए वेद की उपादेयता है। सायणाचार्य के अनुसार - इष्टप्राप्ति तथा अनिष्ट-परिहार के अलौकिक उपाय को बतलाने वाला ग्रन्थ वेद ही है। वेद का वेदत्व भी इसी में है कि वह प्रत्यक्ष या अनुमान के द्वारा दुर्ज्ञेय तथा अज्ञेय उपाय का ज्ञान स्वयं करा दे।[12]

जिसप्रकार ज्योतिष्टोम याग के सम्पादन से स्वर्गप्राप्ति होती है, अतः वह ग्राह्य है तथा कलञ्ज-भक्षण से अनिष्ट की उपलब्धि होती है, अतएव वह परिहार्य है। स्वरूप-भेद केकारण वेद के चार प्रकार कहे गये हैं, जिसमें ऋग्वेद,यजुर्वेद, सामवेद व अथर्ववेद हैं। इनमें ऋग्वेद प्राचीनता व सर्वप्रथम उपलब्धता की दृष्टि से प्रधान है। यह समस्त विद्याओंका उपजीव्य ग्रन्थ है। यद्यपि वेदों का रचयिता कोई व्यक्तिविशेष या ऋषि न होने से ये अपौरुषेय हैं, क्योंकि ये उस परब्रह्म परमात्मा के निःश्वासभूत हैं -**'यस्य निश्वसितं वेदाः'**तथापि महर्षि वेदव्यास ने गद्य-पद्यात्मक ऋचाओं की दृष्टि से वेदों का संकलन चार प्रकार से करके वेद की अध्ययन-अध्यापन परम्परा के शुभारंभ करने का श्रेय महर्षि वेदव्यास को ही जाता है। इस प्रकार वेदव्यास ने सर्वप्रथम ऋग्वेद का अध्ययनप्रथमतया ऋषि पैल को कराया इसके पश्चात् ऋषि पैल के द्वारा आगे सभी के लिए ऋग्वेद के अध्ययन प्रारम्भ हुआ, इसलिए पैल को ऋग्वेद-अध्ययन परम्परा का प्रथम वाहक कहा गया है। ऋच् या ऋक् का अर्थ है- स्तुतिपरक मन्त्र। अर्थात् **'ऋच्यन्ते स्तूयन्तेऽनया इति'**जिन मन्त्रों के द्वारा देवताओं की स्तुति की जाती है, उन्हें ऋक् या ऋचा कहते हैं। अतः स्तुतिपरक (देवताओं के प्रशंसाविषयक) मन्त्रों का समुच्चय होने के कारण इसे ऋग्वेद की संज्ञा दी जाती है। स्तुतिपरक ऋचाओं के संकलन होने से इसे *'ऋग्वेद-संहिता'* भी कहा जाता है।

महर्षि जैमिनि ने ***'ऋक्'*** पद का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है कि जिन मन्त्रों में अर्थवशात् पादों की व्यवस्था है, उन छन्दोबद्ध मन्त्रों का नाम है- ऋचा या ऋक्।[13] ऋग्वेद-संहिता का विभाजन अष्टक व मण्डल क्रम से हैं। अतः कुल 8 अष्टक व 10 मण्डलों में विभक्त हैं। इसलिए बालखिल्य सूक्तों सहित कुल 1028 सूक्त व 10552 मन्त्र-संख्या हैं। प्रत्येक मण्डल के मधुच्छन्दा, गृत्समद्, विश्वामित्र इत्यादि भिन्न-भिन्न ऋषि हैं। ऋग्वेद में नैकविध सूक्त- दानस्तुतिसूक्त, विवाहसूक्त, पुरुषसूक्त,श्रीसूक्त, खिलसूक्त, आख्यानसूक्त व संवादसूक्त इत्यादि पाये जाते हैं,जिनमें तत्-तत् विषय सम्बन्धी वस्तुओं का वर्णन हुआ है।

वैदिक विद्वानों के अनुसार ऋग्वेद-संहिता का सर्वप्रथम समुपलब्ध भाष्य स्कन्दस्वामी का माना गया है, जो कि ऋग्वेद के आधे भाग (चतुर्थ अष्टक तक) पर ही है, अवशिष्ट भाग को नारायण और उद्गीथ ने पूरा किया। मन्त्रों के

---

[8]**आन्वीक्षकी त्रयी वार्ता दण्डनीतिश्चेति विद्याः।**- *कौटिलीय-अर्थशास्त्रम्, वाचस्पति गैरोला, पृ.-8*
[9]**तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।**- *मुण्डकोपनिषद्-1.1.5*
[10]*पुराण-विमर्श,आचार्य बलदेव उपाध्याय,पृ.-151*
[11]**आग्नेये हि पुराणेऽस्मिन् सर्वाः विद्याः प्रदर्शिताः।**- *अग्निपुराण-383.52*
[12]**प्रत्यक्षेणानुमित्या वा यस्तूपायो न बुद्ध्यते ।एनं विदन्ति वेदेन तस्माद् वेदस्य वेदता ॥**- *ऋग्वेदभाष्यभूमिका, आचार्य सायण*
[13]**तेषामृग् यत्रार्थवशेन पादव्यवस्था।** - *जैमिनिसूत्र - 2.1.35*

अर्थ-निष्पादन व प्रयोग की दृष्टि से प्रत्येक वेद की अपनी भिन्न-भिन्न शाखाएँ, संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक व उपनिषद् ग्रन्थ हैं। महाभाष्य के आधार पर ऋग्वेद की इक्कीस शाखाएँ होने का उल्लेख प्राप्त होता है- **'एकविंशतिधा बाह्वृच्यम्।**[14]जिसमें सम्प्रति विशेषतया समुपलब्ध होने से शाकल, वाष्कल, आश्वलायन,शांखायन व माण्डूकायन नामक पाँच शाखाएँ ही प्रसिद्ध रही हैं। मन्त्रों की कर्मपरक व्याख्या करने से प्रत्येक वेद के ब्राह्मण ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं।[15] प्रसिद्ध दो ऋग्वेदीय ब्राह्मण हैं- ऐतरेय व शांखायन(कौषीतकि) व दो आरण्यक हैं - ऐतरेय व शांखायन तथा दो उपलब्ध उपनिषद् हैं - ऐतरेय व कौषीतकि। ऋग्वेद के होत्रकर्म सम्पादन करने वाले ऋत्विक् को 'होता' कहा जाता है, जो ऋग्वेद की ऋचाओं का पाठ कर सम्बन्धी देवताओं को यज्ञ में आहूत करने का कार्य करता है।

2. यजुर्वेद–

यजुष्(याग) सम्बन्धी मन्त्रों का संकलन होने से इसे 'यजुर्वेद' कहा जाता है। यास्काचार्य ने यजुष् का अर्थ स्पष्ट करते हुए कहा है -***'यजुर्यजतेः'***[16](यज्ञसम्बन्धी मन्त्र), ***'इज्यतेऽनेनेति यजुः'*** अर्थात् जिन मन्त्रों के द्वारा यज्ञ किया जाता है, उन्हें यजुष् कहा जाता है। महर्षि जैमिनि के मत में -***'शेषे यजुः शब्दः'***[17] अर्थात् जो मन्त्र ऋचाओं व सामों से व्यतिरिक्त हैं,वे 'यजुष्' कहलाते हैं। अध्वर(यज्ञ) के साक्षात् सम्बन्ध होने से यजुर्वेद को 'अध्वर्युवेद' भी कहते है। साथ ही अध्वर्यु नामक ऋत्विक् द्वारा यज्ञकर्म सम्पादित व नेतृत्व करने से भी इसे अध्वर्युवेद कहा जाता है।

यजुर्वेद प्रधानतया दो प्रकार से विभाजित हैं - शुक्ल यजुर्वेद व कृष्ण यजुर्वेद। इसके दो सम्प्रदाय भी प्रचलित हैं - आदित्य-सम्प्रदाय(शुक्लयजुर्वेद संबंधी) तथा ब्रह्म-सम्प्रदाय (कृष्णयजुर्वेद संबंधी)। महर्षि पतंञ्जलि ने यजुर्वेद की एक सौ शाखाओं का उल्लेख किया है।[18] जिसमें शुक्लयजुर्वेद की 15 शाखाएँ व कृष्णयजुर्वेद की 85 शाखाएँ हैं। किन्तु सम्प्रति शुक्लयजुर्वेद की दो - माध्यन्दिन(वाजसनेयि) व काण्व शाखा तथा कृष्णयजुर्वेद की चार - तैत्तिरीय,मैत्रायणी, कठ, कपिष्ठलकठ शाखाएँ (संहिताएँ) उपलब्ध होती हैं। शुक्ल यजुर्वेद को ही वाजसनेयि-संहिता और माध्यन्दिन संहिता भी कहते हैं। याज्ञवल्क्य इसके ऋषि हैं। पिता का नाम वाजसनि होने से याज्ञवल्क्य को ही वाजसनेय कहते है। इसलिए वाजसनेय से संबद्ध संहिता वाजसनेयि-संहिता हुई। इसमें वाजपेय याग, राजसूय यज्ञ,अग्निष्टोम, पुरुषमेध एवं अग्निचयन इत्यादि विषय वर्णित हैं। शुक्ल यजुर्वेद का एकमात्र विपुलकाय व महत्त्वशाली शतपथ ब्राह्मण हैं, जिसमें यागानुष्ठानादि का सर्वोत्तम प्रतिपादन किया गया है। कृष्ण यजुर्वेद का तैत्तिरीय ब्राह्मण उपलब्ध होता है। शुक्लयजुर्वेद का एकमात्र बृहदारण्यक व कृष्णयजुर्वेद के दो तैत्तिरीय व मैत्रायणीय आरण्यक प्राप्त होते हैं। उपनिषद् ग्रन्थ में शुक्लयजुर्वेद के दो ईशावास्योपनिषद् व बृहदारण्यकोपनिषद् प्राप्त होते हैं तथा कृष्णयजुर्वेद के कठोपनिषद्, तैत्तिरीयोपनिषद्, मैत्रायणी-उपनिषद् व श्वेताश्वतरोपनिषद् प्राप्त होते हैं।

3. सामवेद–

गीतियुक्त मन्त्रों को 'साम या सामन्' कहा जाता है अर्थात् जब ऋग्वेद की ऋचाओं या मन्त्रों को विशिष्ट गान-पद्धति से गाया जाता है, तब उसे 'सामन् या साम' कहते हैं। अतएव जैमिनिसूत्रकार ने साम को प्रतिपादित करते हुए लिखा है -***'गीतिषु समाख्या'***[19] तात्पर्यतः ऋचाओं पर गान ही साम है। 'साम' शब्द में 'सा' का अर्थ- ऋक् या ऋचा तथा 'अम' का अर्थ है - गीति(गान्धारादि स्वर)। जैसा कि बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा है-***'सा च अमश्चेति तत् साम्नः सामत्वम्।'***[20]शाबरभाष्यकार ने भी यही भाव व्यक्त किया है-***'विशिष्टा काचिद् गीतिः सामेत्युच्यते।'***[21] सामवेद दार्शनिक एवं आध्यात्मिक भावना से ओत-प्रोत है। यह उपासना प्रधान वेद है। सामवेद

---

[14] *महाभाष्य,प्रथमपस्पशाह्निक,पृ.-107*
[15] **ब्राह्मणं नाम कर्मणस्तन्मन्त्राणां व्याख्यानग्रन्थः।**- *भट्टभास्कर, तैत्तिरीय संहिता भाष्य-1.5.1*
[16] *निरुक्त-7.12*
[17] *जैमिनिसूत्र-2.1.37*
[18] **एकशतमध्वर्युशाखाः।** - *महाभाष्य,प्रथमपस्पशाह्निक,पृ.-107*
[19] *जैमिनिसूत्र-2.1.36*
[20] *बृहदारण्यकोपनिषद्-1.3.22*
[21] *मीमांसासूत्र-2.1.37*

सूर्य का प्रतिनिधि है। इसमें उद्गीथ(ओंकार) की श्रेष्ठता का वर्णन किया गया है। बृहद्देवताकार आचार्य शौनक का कहना है कि जो पुरुष साम को जानता है वही वेद के रहस्य को जानता है।[22] गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने स्वयं को सामवेद को अपना स्वरूप प्रतिपादित किया है।[23]

सामवेद के दो मुख्य भाग है - पूर्वार्चिक व उत्तरार्चिक। जिसमें पूर्वार्चिक में चार काण्ड हैं - आग्नेय,ऐन्द्र,पवमान व आरण्य काण्ड। जो कि छः अध्यायों में विभक्त हैं। अतः पूर्वार्चिक में कुल मन्त्रसंख्या 650 हैं तथा उत्तरार्चिक में 21 अध्याय (या 9 प्रपाठक) और कुल मन्त्रसंख्या 1225 हैं। अतः सम्पूर्ण सामवेद में कुल मिलाकर 1875 मन्त्र हैं। महाभाष्यकार के अनुसार- सामवेद की हजार शाखाएँ हैं -***'सहस्रवर्त्मा सामवेदः।'***[24]किन्तु सम्प्रति इसकी तीन ही शाखाएँ समुपलब्ध हैं- कौथुमीय, राणायनीय एवं जैमिनीय शाखा। सामवेदीय ब्राह्मणों की संख्या आठ हैं - प्रौढ-ब्राह्मण(ताण्ड्य या पंचविंश), षड्विंश, सामविधान, आर्षेय, देवताध्याय, उपनिषद् ब्राह्मण, संहितोपनिषद् एवं वंश ब्राह्मण। सामवेदीय आरण्यक में केवल तलवकार आरण्यक उपलब्ध है। सामवेदीय उपनिषद् हैं - केनोपनिषद् (तलवकारोपनिषद्) एवं छान्दोग्योपनिषद्।

4. अथर्ववेद–

यह तीनों वेदों की अपेक्षा अर्वाचीन एवं अत्यधिक विशिष्टताओं से युक्त है। इसके अनेक अभिधान हैं - ब्रह्मवेद, अंगिरोवेद, अथर्वाङ्गिरस वेद इत्यादि।इसमें योग-साधना, चित्तवृत्तिनिरोध, ब्रह्मप्राप्ति तथा अनेक प्रकार की वशीकरणादि विद्याओं का वर्णन किया गया है। गोपथ ब्राह्मण(1.4) के अनुसार - अथर्ववेद का लक्ष्य उस आत्मतत्त्व को अपने अन्दर देखना और उसे प्राप्त करना है। निरुक्त और गोपथ ब्राह्मण में *'अथर्वन्'* शब्द की दो प्रकार से व्याख्या की गई है- प्रथमतया 'अथर्वन्' का अर्थ है - गतिहीन या स्थिरता से युक्त योग। यास्काचार्य के अनुसार *'थर्व्'* धातु गति या चेष्टा अर्थ में है। इसलिए थर्व् रहित होने से अथर्वन् का अर्थ है - गतिहीन या स्थिर। परिणामतः जिस वेद में स्थिरता या चित्तवृत्तियों के निरोधरूपी योग का उपदेश है, वह अथर्वन् वेद है।[25]इसके अतिरिक्त गोपथ ब्राह्मण में अथर्वन्(अथर्वा) शब्द 'अथार्वाक्'(अथ+अर्वाक्) का संक्षिप्त रूप कहा गया है। जिसका अभिप्राय है कि समीपस्थ आत्मा को अपने अन्दर देखना या वह वेद जिसमें आत्मा को अपने अन्दर देखने की विद्या का उपदेश है।मुण्डकोपनिषद् में एक जगह ब्रह्मा के ज्येष्ठ पुत्र के रूप में अथर्वा का वर्णन मिलता है, जिसे ब्रह्मा द्वारा समस्त विद्याओं की आश्रयभूत ब्रह्मविद्या के उपदेश का कथन है।[26]अथर्ववेद में ऐसे कई सूक्त उपलब्ध है जो आत्मविद्या का उपदेश देते हैं। जैसे - ब्रह्मविद्या(4.1), आत्मविद्या(4.2), आत्मा(5.9), ज्येष्ठ ब्रह्म(10.8), उच्छिष्ट ब्रह्म(11.7), महद् ब्रह्म(1.32) इत्यादि सूक्त हैं। अथर्ववेद विद्याओं का विश्वकोष है, जिसमें वेदकालीन सभ्यता, संस्कृति, ज्ञान व विज्ञान का पूर्णतः समावेश हैं।

आचार्य बलदेव उपाध्याय के अनुसार- इस जीवन को सुखमय तथा दुःख-विरहित बनाने के लिए जिन साधनों की आवश्यकता होती है, उनकी सिद्धि के लिये नाना अनुष्ठानों का विधान इस वेद में किया गया है।[27]न्यायमञ्जरीकार जयन्तभट्ट ने स्वकीय ग्रन्थ में अथर्ववेद को प्रथम स्थान देते हुए कहा कि यह चारों वेदों में सर्वोत्कृष्ट वेद है।[28]ऋग्वेदादि तीनोंवेद पारलौकिक फल देने वाले होते हैं, किन्तु अथर्ववेद ऐहिक फल देने वाला माना गया है। साथ ही यज्ञ सम्पादित करने वाले चार ऋत्विजों में से अथर्ववेदीय *'ब्रह्मा'* नामक ऋत्विज् अन्यतम है, क्योंकि यही यज्ञ का अध्यक्ष होता है। अतः इसका प्रधान कार्य यज्ञीय कार्यों का निरीक्षण व संभावित त्रुटियों का परिमार्जन करना होता है।

---

[22]**सामानि यो वेत्ति स वेद तत्त्वम्।**-*बृहद्देवता*
[23]**वेदानां सामवेदोऽस्मि।**- *गीता-10.42*
[24] *महाभाष्य,प्रथमपस्पशाह्निक,पृ.-107*
[25]**अथर्वाणोऽथर्वणवन्तः।थर्वतिश्चरितकर्मा, तत्प्रतिषेधः।**- *निरुक्त - 11.18*
[26]**स ब्रह्मविद्यां सर्वविद्याप्रतिष्ठामथर्वायज्येष्ठपुत्राय प्राह।** -*मुण्डकोपनिषद् - 1.1.1*
[27] *वैदिक साहित्य और संस्कृति, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.-149*
[28]**तत्र वेदाश्चत्वारः, प्रथमोऽथर्ववेदः।**- *न्यायमञ्जरी*

महाभाष्यकार ने पस्पशाह्निक में अथर्ववेद की नौ शाखाओं का उल्लेख किया है-***'नवधाऽथर्वणो वेदः'***[29]'चरणव्यूह', 'प्रपञ्चहृदय' एवं सायणाचार्य की 'अथर्ववेदभाष्यभूमिका' में भी 9 ही शाखाओं का उल्लेख मिलता है। जो सायण के अनुसार इस प्रकार है- पैप्पलाद, तौद(स्तौद), मौद, शौनकीय, जाजल,जलद,ब्रह्मवेद, देवदर्श व चारणवैद्य। किन्तु इनमें से सम्प्रति दो ही शाखाएँ उपलब्ध होती हैं - शौनकीय शाखा व पैप्पलाद शाखा(आचार्य पिप्पलाद प्रवर्तित)। सम्प्रति प्रचलित शौनकीय शाखा के ही संहिता व गोपथ ब्राह्मण प्राप्त होते हैं। अतः अथर्ववेदीय शौनकसंहिता के अनुसार अथर्ववेद में 20 काण्ड, 731 सूक्त व 5987 मन्त्र हैं। अथर्ववेद का पृथक् से कोई आरण्यक ग्रन्थ उपलब्ध नहीं है। अथर्ववेद के दो उपनिषद् प्राप्त होते हैं - प्रश्नोपनिषद् व मुण्डकोपनिषद्।

5. शिक्षा–

वेदपुरुष के अङ्गरूप में इन विद्याओं का समाहार किया गया है।वेद व वेदाङ्गों के क्रम का निर्देश सर्वप्रथम मुण्डकोपनिषद् में प्राप्त होता है।[30]वेदपुरुष की नासिकाऽङ्गको *'शिक्षा'* कहा गया है।[31]शिक्षा वेदाङ्ग भी एक विद्या के रूप में द्योतित है। क्योंकि वेद की ऋचाओं या मन्त्रों का स्वरादि सहित शुद्ध उच्चारण करना एक महत्त्वपूर्ण विषय है। क्योंकि मन्त्रों के अशुद्ध उच्चारण से यज्ञ विपरीत फलदायक बन सकता है। जैसा कि - *'इन्द्रशत्रुर्वर्धस्व'* में स्वर भेद के कारण उत्पन्न उच्चारण से विपरीत फल को देने वाला बन गया।

आचार्य सायण के अनुसार शिक्षा की परिभाषा है-***'स्वरवर्णाद्युच्चारणप्रकारो यत्र शिक्ष्यते उपदिश्यते सा शिक्षा'***[32]अर्थात् जिसमें स्वर,वर्ण आदि के उच्चारण की शिक्षा दी जाती है, उसे शिक्षा कहते है। *तैत्तिरीयोपनिषद्* में शिक्षा के छः अङ्गों को प्रतिपादित किया गया है - वर्ण(अकारादि),स्वर(उदात्तादि),मात्रा(ह्रस्वादि), बल(प्रयत्नरूप),साम(उच्चारणमाधुर्यादिरूप) व सन्तान (संहिता)।[33]

उच्चारणगत विभिन्नताओं का ज्ञान कराने के उद्देश्य प्रत्येक वेद के अपने-अपने शिक्षाग्रन्थ उपलब्ध होते हैं। जिनमें मुख्य पाँच हैं - पाणिनीयशिक्षा, भरद्वाजशिक्षा,याज्ञवल्क्यशिक्षा(यजुर्वेद), नारदीयशिक्षा(सामवेद), वासिष्ठी शिक्षा, कात्यायनी शिक्षा, पाराशरी शिक्षा, माण्डव्य शिक्षा एवं प्रातिशाख्यप्रदीपशिक्षा। इनमें से मुख्यतः *'पाणिनीय-शिक्षा'* का सम्प्रति प्रचलन अधिक है। इसमें कुल 60 श्लोक हैं। इसमें वर्णों की संख्या, उच्चारण-प्रक्रिया, ध्वनि, स्थान,प्रयत्न, संवृत-विवृत, पाठक के गुण-दोषों का वर्णन स्पष्टतया किया गया है।वस्तुतः शिक्षा,छन्द व व्याकरण वेद के परिप्रेक्ष्य में सामान्य नियमों को बताते हैं, किन्तु वैदिकी शाखाओं के भिन्न-भिन्न होने से उनके विशिष्ट व्याकरण,उच्चारणप्रक्रिया व उदात्तादि स्वरों का ज्ञान तत्तद् वेदों के प्रातिशाख्य-ग्रन्थों से होता है। जैसे - आचार्य शौनक प्रणीत ऋक्-प्रातिशाख्य(ऋग्वेद का),कात्यायनप्रणीत वाजसनेयि-प्रातिशाख्य(शुक्लयजुर्वेद), तैत्तिरीय-प्रातिशाख्य(कृष्णयजुर्वेद),पुष्पऋषि प्रणीत पुष्पसूत्र(सामवेदीय-प्रातिशाख्य), शाकटायनविरचित कौथुमशाखीय ' ऋक्-तन्त्र-व्याकरण'(सामवेदीय-प्रातिशाख्य), शाकल्यविरचित अथर्ववेद-प्रातिशाख्य, कौत्सविरचित 'शौनकीया चतुरध्यायिका'(अथर्ववेद)।

6. कल्प–

वेदाङ्ग साहित्य में कल्प का स्थान नितान्त महत्त्वपूर्ण है। इसे वेदपुरुष के हाथ के रूप में माना जाता है। जैसा कि आचार्य सायण के अनुसार - जिन ग्रन्थों में यज्ञ-संबन्धी विधियों का समर्थन या प्रतिपादन किया जाता है, वे कल्प हैं- ***'कल्प्यते समर्थ्यते यागप्रयोगोऽत्र इति व्युत्पत्तेः।'***[34]तथा आचार्य विष्णुमित्र ने ऋग्वेदप्रातिशाख्य की टीका में कल्प को पारिभाषित करते हुए लिखा है कि जिनमें वैदिक कर्मों यज्ञादि का सांगोपांग विवेचन किया जाता है, उन्हें *कल्प* कहा जाता है।[35]आचार्य कपिल द्विवेदी के मतानुसार वेदों में वर्णित छोटे और बड़े यज्ञों के

---

[29] *महाभाष्य,प्रथमपस्पशाह्निक,पृ.-107*

[30]**तत्रापरा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदोऽथर्ववेदः शिक्षा कल्पो व्याकरणं निरुक्तं छन्दो ज्योतिषमिति।** - *मुण्डकोपनिषद्-1.1.5*

[31]**'शिक्षा घ्राणं तु वेदस्य'**- *पाणिनीयशिक्षा-42*

[32] *ऋग्वेदभाष्यभूमिका*

[33]**शीक्षां व्याख्यास्यामः। वर्णः स्वरः। मात्रा बलम्। साम सन्तानः। इत्युक्तः शीक्षाध्यायः।।**- *तैत्तिरीयोपनिषद्-1.2.1*

[34] *ऋग्वेदभाष्यभूमिका*

[35]**वेदविहितानां कर्मणाम् आनुपूर्व्येण कल्पनाशास्त्रम्।**- *ऋग्वेद-प्रातिशाख्य की वर्गद्वयवृत्ति,पृ.-13*

सर्वांगपूर्ण विधि-विधान का जिन ग्रन्थों में वर्णन किया गया है, उन्हें 'कल्प' ग्रन्थ कहते हैं।[36]आचार्य बलदेव उपाध्याय के मत में जिन यज्ञ-यागादि तथा विवाहोपनयनादि कर्मों का विशिष्ट प्रतिपादन वैदिक ग्रन्थों में किया गया है, उन्हीं का क्रमबद्ध वर्णन करने वाले सूत्र-ग्रन्थों का सामान्य अभिधान 'कल्प' है।[37]इसलिए इन्हें ***'कल्पसूत्र'*** भी कहा जाता है। क्योंकि इसमें वर्णित सम्पूर्ण विषय सूत्ररूप में निबद्ध है। जो कि प्रतिपाद्य की दृष्टि से चार प्रकार के हैं –

क. **श्रौतसूत्र**-इसमें श्रुतिप्रतिपादित यज्ञों का वर्णन व विधान प्राप्त होता है। जैसे- दर्शपूर्णमास,सोमयाग,वाजपेय,राजसूय,अश्वमेध, सौत्रामणी आदि।

ख. **गृह्यसूत्र**- इसके अन्तर्गत गृहस्थधर्म से संबंधित षोड़श संस्कारों, पञ्चमहायज्ञ, सप्त पाकसंस्था, गृहनिर्माण, गृह-प्रवेश, पशुपालन एवं कृषिकर्म इत्यादि का विधान मिलता है।

ग. **धर्मसूत्र**- इसमें चतुर्वर्णों के कर्तव्यों, आश्रमों, राजा के कर्तव्याकर्तव्यों का विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है। इसके लिए गौतमधर्मसूत्र व बौधायन धर्मसूत्र इत्यादि उपलब्ध होते हैं।

घ. **शुल्वसूत्र**- यज्ञवेदी-निर्माण, इष्टियों के परिमाण तथा ज्यामिति सम्बन्धी कल्पनाओं तथा गणनाओं की विधि का विस्तृत रूप से वर्णन किया गया है। जिसके लिए बौधायन, आपस्तम्ब व कात्यायन शुल्वसूत्र इत्यादि प्रसिद्ध हैं।

7. व्याकरण–

वेदपुरुष के मुख को *व्याकरण* की संज्ञा दी है। जैसा कि पाणिनीय शिक्षा में कथित है -***'मुखं व्याकरणं स्मृतम्'***[38]जिस प्रकार बिना मुख के भोजनादि ग्रहण न होने से शरीरादि की पुष्टि असंभव है उसी तरह व्याकरण के बिना वेद-पुरुष के शरीर की रक्षा भी असम्भव है। इसलिए वेदाङ्ग की प्रधान विद्या के रूप में व्याकरण का स्थान अन्यतम है। क्योंकि पद में निहित प्रकृति-प्रत्यय, शब्द के साधुत्व-असाधुत्व व शब्दार्थ-ज्ञान का सर्वोत्तम प्रतिपादन व्याकरण के द्वारा ही संभव है। अतः व्याकरण का व्युत्पत्तिलभ्य अर्थ है-पदों की मीमांसा करने वाला शास्त्र-***'व्याक्रियन्ते व्युत्पाद्यन्ते शब्दा अनेनेति व्याकरणम्।'***

व्याकरण-ज्ञान की अनिवार्यता के लिए महाभाष्यकार पतञ्जलि ने व्याकरण के पाँच प्रयोजनों की ओर संकेत भी किया है- रक्षा (वेदों के रक्षार्थ), ऊह(मन्त्रों में यथास्थान विभक्ति-वाच्यपरिवर्तनार्थ), आगम(कामरहित होकर वेदाध्ययन के आदेश पूर्त्यर्थ), लघु(सरलतया शब्द-ज्ञानार्थ) एवं असन्देह(शब्दार्थविषयक सन्देह निवृत्यर्थ) के लिए व्याकरण का ज्ञान होना आवश्यक है।[39]लौकिक संस्कृत व्याकरण के लिए महर्षि पाणिनी विरचित ***'अष्टाध्यायी'***सुप्रसिद्ध है। किन्तु वैदिक संस्कृत व्याकरण के लिए *प्रातिशाख्य* ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं।

8. निरुक्त–

वैदिक पदों की निरुक्ति अथवा निर्वचन के लिए *निरुक्त*शास्त्र का स्थान प्रमुख है। यास्काचार्य ने वैदिक पदों के अर्थ-ज्ञान के लिए निरुक्त शास्त्र की रचना की। निरुक्त का उद्देश्य शब्द के मूलरूप का ज्ञान कराना, शब्द में प्रकृति-प्रत्यय का स्पष्टीकरण,धात्वर्थ और प्रत्ययार्थ का विशदीकरण, समानार्थक और नानार्थक शब्दों का विवेचन करना है। निरुक्त शास्त्र को अंग्रेजी में *'Etymology'* कहा जाता है।

निरुक्त को परिभाषित करते हुए आचार्य सायण ने लिखा है कि- अर्थावबोध के लिए स्वतन्त्र रूप से जो पदों का संग्रह है, वही निरुक्त है -***'अर्थाऽवबोधे निरपेक्षतया पदजातं यत्र तद् निरुक्तम्'***[40]। निरुक्त सम्प्रति उपलब्ध है, जिसमें 12 अध्याय व अन्त में परिशिष्ट के रूप में 2 अध्याय हैं, अतः निरुक्त में कुल 14 अध्याय हैं। यास्क का निरुक्त वस्तुतः *निघण्टु* ग्रन्थ की व्याख्या या भाष्य है। निघंटु वैदिक शब्द-कोश या वैदिक शब्दों का संकलन है। निरुक्त की सम्प्रति तीन टीकाएँ उपलब्ध होती हैं - दुर्गाचार्य कृत *'ऋज्वर्थ-वृत्ति'*, स्कन्दमहेश्वर की टीका व

---

[36] *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति, आचार्य कपिल द्विवेदी, पृ.-213*
[37] *वैदिक साहित्य और संस्कृति, आचार्य बलदेव उपाध्याय, पृ.-306*
[38] *पाणिनीयशिक्षा-42*
[39] **रक्षोहागमलघ्वसन्देहाः प्रयोजनम्।**- *महाभाष्य,प्रथमपस्पशाह्निक,पृ.-21*
[40] *ऋग्वेदभाष्यभूमिका*

वररुचि कृत *'निरुक्त-निचय'*। निरुक्त के पाँच प्रतिपाद्य विषय हैं - 1. वर्णागम-विचार, 2. वर्ण-विपर्यय-विचार, 3. वर्ण-विकार-विचार, 4. वर्णनाश-विचार, 5. धातुओं का अनेक अर्थों में प्रयोग।[41]यास्क पाणिनि से पूर्ववर्ती है, इनका समय 800 ईसापूर्व माना जाता है।

9. छन्द–

'छन्दस्-विद्या' के रूप में इसका स्थान प्रमुख है।वेदपुरुष के पादाङ्ग के रूप में छन्द को मुख्य माना गया है।[42]इसलिए वेदों में छन्द की प्रधानता होने के कारण वेद और वैदिक भाषा को *'छन्दस्'* भी कहा गया है। पाणिनि ने अपने सूत्रों में कई जगह ***'बहुलं छन्दसि'***(7.1.8, 7.1.10,7.1.26,7.1.37 इत्यादि) कहकर वैदिक भाषा के लिए 'छन्दस्' शब्द का प्रयोग किया है। वेद के मन्त्रों के उच्चारण निमित्त छन्दों का ज्ञान अनिवार्य हैं। प्रत्येक सूक्त में देवता, ऋषि व छन्द का होना आवश्यक माना जाता है। निरुक्तकार यास्क ने छन्द का निर्वचन करते हुए लिखा है-***छन्दांसि छादनात्।***[43]अर्थात् छन्द भावों को आच्छादित करके उसे समष्टिरूप प्रदान करता है। कात्यायन ने भी अपने *सर्वानुक्रमणी*में छन्द का लक्षण प्रतिपादित किया है -***'यदक्षरपरिमाणं तच्छन्दः'*** अर्थात् जिसमें वर्णों या अक्षरों की संख्या नियत होती है, उसे छन्द कहते हैं। वेदों में मात्रिक छन्दों का अभाव है, क्योंकि वेद में छन्द की गणना मन्त्र में निहित अक्षरों या वर्णों के आधार पर की जाती है। इसलिए वेदोक्त सभी छन्द 'वर्णिक' छन्द कहलाते हैं, न कि मात्रिक।जैसे- गायत्री, अनुष्टुप्,उष्णिक्, त्रिष्टुप्, पंक्ति, बृहती, जगती इत्यादि वर्णिक् छन्द हैं।

कात्यायन की *सर्वानुक्रमणी* में यह स्पष्ट कथन है कि जो व्यक्ति छन्द, ऋषि व देवता के ज्ञान से हीन होकर मन्त्र का अध्ययन,अध्यापन,यजन व याजन करता है, उसका प्रत्येक कार्य निष्फल हो जाता है।[44]कुछ प्रमुख छन्दोविषयक ग्रन्थ सम्प्रति समुपलब्ध हैं - पिंगल प्रणीत *'छन्दःसूत्र'*, कात्यायन कृत दो छन्दोऽनुक्रमणियाँ, *ऋग्प्रातिशाख्य*(पटल16 से 18) एवं*शांखायन श्रौतसूत्र* (केवल 7.27 में)।

10.ज्योतिष–

वेदों में यज्ञ का सर्वाधिक महत्त्व है। इसलिए यज्ञ का सम्पादन समुचित काल में प्रारम्भ करने की प्रक्रिया से संबंधित विषयों का ज्ञान ज्योतिष वेदाङ्ग के द्वारा किया जाता है। क्योंकि यज्ञविशेष को एक नियत ऋतु, पक्ष, तिथि, व मुहूर्त में सम्पादित करने के लिए समय-शुद्धि की अतिआवश्यकता होती है, इसलिए काल-विधानशास्त्ररूपी ज्योतिष-विद्या की नितान्त उपादेयता है। वेदपुरुष के चक्षु के रूप में ज्योतिष विद्या को रखा गया है।[45]जिस प्रकार चक्षु के बिना देखना असम्भव है, उसी प्रकार ज्योतिष-विद्या के बिना वेदपुरुष के रहस्यों व समयासमय का निर्धारण नहीं किया जा सकता। यह यज्ञों का कालविधानशास्त्र है।इसलिए महर्षि लगधाचार्य ने यहाँ तक कहा है कि वैदिक यज्ञ का यथार्थ ज्ञाता वही है जो इस कालविधानशास्त्र ज्योतिष को जानता हो-

वेदा हि यज्ञार्थमभिप्रवृत्ताः कालाभिपूर्वा विहिताश्च यज्ञाः।तस्मादिदं कालविधानशास्त्रं यो ज्योतिषं वेद स वेद यज्ञम्।।[46]

वैदिक कालीन के समीप ज्योतिष-विषयक *'लगध'* प्रणीत *'वेदाङ्ग-ज्योतिष'* नामक एक ही प्राचीन ग्रन्थ मिलता है।जो दो भागों में विभक्त है- प्रथम भाग - *'आर्चज्योतिष'*(ऋग्वेद-संबन्धी व कुल 36 श्लोक)।द्वितीय भाग -*'याजुष् ज्योतिष'* (यजुर्वेद-संबन्धी व कुल 43 श्लोक)इसके अनन्तर भास्काराचार्य, वराहमिहिरादि अनेक ज्योतिषी हुए जिनके द्वारा ज्योतिष-विषयक अनेक ग्रन्थ लिखे गये।

---

[41]**वर्णागमो वर्णविपर्ययश्च द्वौ चापरौ वर्णविकारनाशौ। धातोस्तदर्थातिशयेन योगस्तदुच्यते पञ्चविधं निरुक्तम्।।**- *निरुक्त*

[42]**छन्दः पादौ तु वेदस्य।** -*पाणिनीयशिक्षा-41*

[43]*निरुक्त-7.19*

[44]**यो ह वा अविदितार्षेयच्छन्दो-दैवत-ब्राह्मणेन मन्त्रेण याजयति वा अध्यापयति वा स्थाणुं वर्च्छति गर्तं वा पात्यते या पापीयान् भवति।**- *सर्वानुक्रमणी-1.1*

[45]**ज्योतिषामयनं चक्षुः।**- *पाणिनीयशिक्षा-41*

[46]*वेदांग ज्योतिष,लगधाचार्य-3*

11.पुराण–

संस्कृत-साहित्य के बृहद् वाङ्मय में 'पुराण' का स्थान अत्यन्त गौरवमय है। इसलिए चतुर्दश व अष्टादश विद्याओं की गणना में पुराण-विद्या का भी उद्देश किया गया। प्रमुख निर्वचनकार यास्क के मत में पुराण शब्द की व्युत्पत्ति है - ***पुराणं कस्मात्? पुरा नवं भवति।***[47]अर्थात् जो प्राचीन होकर भी नया होता है। वायुपुराण के अनुसार- ***'यस्मात् पुरा हि अनति इदं पुराणम्।'***[48]अर्थात् प्राचीन काल में जो जीवित था। ब्रह्माण्डपुराण के मत में- ***'यस्मात् पुरा ह्यभूच्चैतत् पुराणम्'***[49] अर्थात् प्राचीन काल में ऐसा हुआ। फलतः उपर्युक्त मतों से यह सामान्यतया भासित होता है कि प्राचीन काल की घटनाओं और कथानकों का सविस्तार वर्णन करने के कारण इन्हें *'पुराण'* कहा जाता है। जहाँ वेदों की शैली रूपकमयी है, वहीं पुराणों की शैली रूपक की अतिशयोक्ति है।पुराण की इसी महत्ता से *छान्दोग्योपनिषद्*में पुराण को पंचम वेद स्वीकार किया है - ***'ऋग्वेदं भगवोऽध्येमि यजुर्वेदं सामवेदमाथर्वणं चतुर्थमितिहासपुराणं पञ्चमं वेदानां वेदम्'***[50]मत्स्यपुराण का कथन है कि सर्वप्रथम ब्रह्मा ने पुराणों का स्मरण किया, तदनन्तर ब्रह्मा के मुख से वेद निःसरित हुए।[51]तथापि पुराणों की रचना का श्रेय महर्षि वेदव्यास को जाता है। पुराणों की संख्या 18 है- ब्रह्म, पद्म, विष्णु, शिव, भागवत, नारदीय, मार्कण्डेय, अग्नि,भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, वराह, स्कन्द, वामन, कूर्म, मत्स्य, गरुड़ तथा ब्रह्माण्ड पुराण। इन पुराणों में सामान्यतः पांच विशेषताएँ पायी गयी, जिसके आधार पर पुराण के ये पञ्च-लक्षण प्रायः सभी पुराणों में कथित है - ***'सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च। वंश्यानुचरितं चेति पुराणं पञ्चलक्षणम्।।'*** अर्थात् पुराणों में सृष्टि-प्रक्रिया का वर्णन,चार प्रकार के प्रलयों का वर्णन, विभिन्न राजाओं की वंश परम्परा का वर्णन, चौदह मन्वन्तरों का वर्णन तथा अनेक राजाओं के वंशों का कथावृत्त व इतिहास का वर्णन करना ही पुराण का लक्षण है।

12.न्याय-विद्या–

भारतीय न्याय-विद्या अत्यन्त प्राचीन है, जो तर्क-वितर्क के द्वारा किसी पदार्थ की सिद्धि करती है।*न्यायभाष्यकार वात्स्यायन* के अनुसार- भिन्न-भिन्न प्रमाणों के द्वारा वस्तुतत्त्व का परीक्षण करना न्याय है - ***'प्रमाणैरर्थपरीक्षणं न्यायः'***[52]अतएव इसके लिए न्याय-विद्या का अनुगमन स्वाभाविक है। तथापि न्यायविद्या द्वारा मुख्यतः प्रमेय व प्रमाण विषयक यथार्थ ज्ञान की विवेचना कर मोक्ष-लाभ करा देने से इसे दर्शनशास्त्र की श्रेणी में भी रखा जाता है। अतएव इसे *प्रमाणविद्या, तर्कविद्या,आन्वीक्षिकी-विद्या,वादविद्या, हेतुविद्या* इत्यादि भी कहा जाता है। न्यायविद्या के नितान्त उपादेय होने से इसे सभी विद्याओं का प्रकाशक, नाना कर्मों के उपाय के रूप में एवं सभी धर्मों के आश्रय के रूप में माना गया है।[53]समान विषयों का निरूपण करने के कारण न्याय-वैशेषिक समानतन्त्र कहे जाते हैं। यह प्राचीन व नव्य न्याय की दृष्टि से दो भागों में विभक्त है। प्राचीन न्याय के प्रवर्तक महर्षि गौतम (अक्षपाद) को माना जाता है, जिनका *'न्यायसूत्र'* नामक ग्रन्थ है।जिसमेंपाँच अध्याय(प्रत्येक अध्याय में दो आह्निक) व लगभग 500 सूत्र हैं। इसमें प्रमाण-प्रमेयादि सौलह पदार्थों का विवेचन हैं। न्यायसूत्र पर सर्वप्रथम प्राचीन वात्स्यायन कृत *'वात्स्यायनभाष्य'* मिलता है, जिनका समय लगभग चौथी शताब्दी रहा है।तदनन्तर प्राचीन न्यायाचार्यों में भरद्वाज उद्योतकर (वात्स्यायनभाष्य पर वार्तिक ग्रन्थ), वाचस्पतिमिश्र (उद्योतकर के न्यायवार्तिक पर *न्यायवार्तिकतात्पर्यटीका)* व
जयन्तभट्ट*(न्यायमञ्जरी)*,उदयनाचार्य*(न्यायकुसुमाञ्जलि)*, भासर्वज्ञ*(न्यायसार)* इत्यादि का नाम आता है।

इसके पश्चात् नव्यन्याय की विचारधारा के प्रवर्तक के रूप में बारहवीं सदी में गंगेश उपाध्याय हुए, जिन्होंने अपने *'तत्त्वचिन्तामणि'* नामक ग्रन्थ में प्रमाणों का विशिष्ट शैली में विवेचन कर न्यायदर्शन को नया रूप दिया। इसके अनन्तर नव्यन्यायाचार्यों में गंगेश के सुपुत्र वर्द्धमान उपाध्याय(तत्त्वचिन्तामणिप्रकाश), पक्षधरमिश्र या जयदेव (तत्त्वचिन्तामणि'आलोक'), वासुदेवमिश्र (न्यायसिद्धान्तसार), वासुदेव सार्वभौम, रघुनाथ शिरोमणि

---

[47] *निरुक्त - 3.19*
[48] *वायुपुराण-1.203*
[49] *ब्रह्माण्डपुराण-1.1.173*
[50] *छान्दोग्योपनिषद्-7.1.2, पृ.-672*
[51] **पुराणं सर्वशास्त्राणां प्रथमं ब्रह्मणा स्मृतम्, नित्यं शब्दमयं पुण्यं शतकोटिप्रविस्तरम्, अनन्तरं च वक्त्रेभ्यो वेदास्तस्य विनिःसृताः।।** - *मत्स्यपुराण-3.3-4*
[52] *न्यायभाष्य-1.1.1*
[53] **प्रदीपः सर्वविद्यानामुपायः सर्वकर्मणाम्। आश्रयः सर्वधर्माणां शश्वदान्वीक्षिकी मता।।**- *कौटिल्यअर्थशास्त्रम्, पृ.-9*

(तत्त्वचिन्तामणि ' दीधिति'), मथुरानाथ तर्कवागीश(तत्त्वचिन्तामणि रहस्य या ' माथुरी' या फक्किका, तत्त्वचिन्तामणि आलोक रहस्य तथा दीधिति रहस्य),जगदीशतर्कालंकार(तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रकाशिका तथा शब्दशक्तिप्रकाशिका), गदाधर भट्टाचार्य(तत्त्वचिन्तामणि-दीधिति-प्रकाशिका व्याख्या या गादाधरी, व्युत्पत्तिवाद, विषयतावाद आदि।) इत्यादि अनेक नव्यनैयायिक हैं। प्राचीन-नव्यन्यायधारा के अतिरिक्त प्रकरण ग्रन्थ-धारा भी विकसित हुयी, जिसमें न्याय-वैशेषिक आधारित प्रकरण ग्रन्थ लिखे गये। जिसमें मुख्यतःभासर्वज्ञ कृत 'न्यायसार'(10वीं शती),वरदराज कृत 'तार्किक रक्षा' (12वीं शती),केशवमिश्र कृत *'तर्कभाषा'*(13वीं शती) तथा अन्नंभट्ट कृत *'तर्कसंग्रह'*(17वीं शती) इत्यादि अनेक प्रकरण ग्रन्थों की रचना हुई।

13.मीमांसा-विद्या–

चतुर्दश विद्याओं में मीमांसा का स्थान अन्यतम है। मीमांसा का शाब्दिक अर्थ है - विचार। किसी भी वस्तु के विषय में विचार करना मीमांसा है। अतएव इसे 'विचारशास्त्र' भी कहा जाता है। यागादिरूप धर्म की प्रमाणादि के द्वारा दार्शनिक व्याख्या प्रस्तुत करना ही मीमांसा का मुख्य लक्ष्य है। जैसा कि श्लोकवार्तिक में कहा गया है- ***'धर्माख्यं विषयं वक्तुं मीमांसायाः प्रयोजनम्।'***[54]इसलिए मीमांसा एक दर्शनशास्त्रीय ग्रन्थ भी है। जो वैदिक मन्त्रों या श्रुतियों की कर्म व ज्ञान के आधार पर व्याख्या करने से यह दो प्रकार का है- पूर्वमीमांसा व उत्तरमीमांसा। इसलिए पूर्वमीमांसा में यागादि का कर्मकाण्डपरक विवेचन है तथा उत्तरमीमांसा या वेदान्तदर्शन में यागादि धर्मों का ज्ञानपरक विवेचन है। सामान्यतः मीमांसा का मुख्य ध्येय धर्म-जिज्ञासार्थ विषयों की पूर्णता करना है। इसलिए पूर्वमीमांसा के प्रवर्तक महर्षि जैमिनि ने स्वकीय***'जैमिनिसूत्र'***ग्रन्थ के पहले सूत्र***'अथातो धर्मजिज्ञासा'***[55]से ग्रन्थ का आरम्भ किया है। इसमें धर्म की साङ्गोपाङ्ग मीमांसा की गयी है। इसलिए इसे 'धर्ममीमांसा' भी कहते हैं।

सम्प्रति उपलब्ध मीमांसा-दर्शन में बारह अध्याय हैं। तथापि इसके अतिरिक्त संकर्षण काण्ड के भी चार अध्याय मीमांसा में ही परिगणित किये जाते हैं। किन्तु संकर्षण काण्ड के चार अध्याय पठन-पाठन में प्रचलित न होने से मीमांसा में द्वादश अध्याय हीस्वीकृत हैं। इसलिए इसे ***'द्वादशलक्षणी'*** भी कहा जाता है। मीमांसा-सूत्र पर प्राप्त सर्वप्रथम व्याख्या शाबरभाष्य के नाम से प्राप्त होती है। यह शबरस्वामी द्वारा मीमांसासूत्रों पर किया गया सर्वप्रथम भाष्य है। जिसका समय दार्शनिकों ने लगभग 57 वर्ष ईसापूर्व माना है। शबरस्वामी के पश्चात् प्रभाकर तथा कुमारिलभट्ट इन दो मीमांसकों द्वारा भिन्न-भिन्न सिद्धान्तों- *अन्विताभिधानवाद व अभिहितान्वयवाद* की स्थापना करने से दो पृथक्-पृथक् शाखाएँ निर्मित हुई, जिसे बाद में 'गुरुमत' व 'भाट्टमत' कहा गया। इस प्रकार गुरुमतानुयायी के रूप में शालिकनाथमिश्र का नाम आता है एवं भाट्टमतानुयायी के रूप में पार्थसारथिमिश्र, मण्डनमिश्र व उम्बेक इत्यादि आते हैं। प्रभाकर की दो कृतियाँ - बृहती (शाबरभाष्य पर की गयी व्याख्या) व लघ्वी(विवरण)प्राप्त होती है। कुमारिलभट्ट के तीन ग्रन्थ प्राप्त होते हैं- श्लोकवार्तिक,तन्त्रवार्तिक व टुप्टीका। ये तीनों शाबरभाष्य के विभिन्न अंशों की व्याख्याएँ हैं। उपर्युक्त दो शाखाओं के अतिरिक्त तृतीय शाखा भी प्राप्त होती है, जो मुरारी मिश्र द्वारा प्रवर्तित है, किन्तु इनका कोई ग्रन्थ सम्प्रति उपलब्ध नहीं है।

उत्तरमीमांसा को 'ज्ञानकाण्ड' कहा जाता है। बादरायण कृत 'ब्रह्मसूत्र' में पहले सूत्र***'अथातो ब्रह्मजिज्ञासा'*** में ब्रह्म-साक्षात्कार से मुक्ति की बात कही है। सभी मन्त्रों या श्रुतियों के तात्पर्य का समन्वय एक मात्र ब्रह्म में है। इसके लिए 'बादरायण' उपनिषद् वचनों को प्रमाण के रूप में रखते हैं। इसलिए इसे 'वेदान्तदर्शन' (उपनिषद् दर्शन) की संज्ञा भी दी गई है। इसको और भी पल्लवित, पुष्पित व फलित करने का श्रेय **'अद्वैतवाद'** के संवर्धक *आद्यगुरु शङ्कराचार्य* को जाता है। जिन्होंने समस्त दर्शनों का खण्डन कर एकमात्र ब्रह्म-साक्षात्कार के द्वारा ही मोक्ष प्राप्य है, का विवेचन किया।

14.धर्मशास्त्र–

धर्म का निरूपण करना ही भारतीय वैदिक संस्कृति का चरम लक्ष्य है। इसलिए धर्म-विद्या के रूप में इसकी गणना की गयी है। उपर्युक्त कल्पसूत्र के अन्तर्गत धर्मसूत्र में चतुर्वर्णों के कर्तव्यों, आश्रमों, राजा के कर्तव्याकर्तव्यों

[54] *श्लोकवार्तिक-11*
[55] *जैमिनिसूत्र-1.1.1*

का विशेष रूप से प्रतिपादन किया गया है। तथापि इसे पृथक्तया विद्या के रूप में ग्रहण करने का तात्पर्य धर्म की याज्ञिक, आध्यात्मिक, दार्शनिक व व्यावहारिक व्याख्या प्रस्तुत करने से है। वस्तुतः धर्म के प्रमाण अथवा स्रोत के रूप में स्मृति ग्रन्थों- मनुस्मृति, याज्ञवल्क्यस्मृति, हारितस्मृति, शंखस्मृति इत्यादि को '***धर्मशास्त्र***' कहा जाता है। जैसा कि आचार्य मनु ने कहा है-'***धर्मशास्त्रं तु वै स्मृतिः।***'[56]श्रुति आधारित स्मृति में कहा गया धर्म ही अनुष्ठेय है। धर्म में श्रुति स्वतःप्रमाण व स्मृति आदि परतः प्रमाण है। यद्यपि धर्मशास्त्र में सभी सूत्रग्रन्थ(श्रौत,ग्राह्य,धर्मसूत्र), महाभारत,पुराण और स्मृतियों का समावेश हैं, परन्तु शनैः शनैः विशाल धर्मशास्त्र की सामग्रियों के संग्रह या संहिता का रूप धारण कर लिया, जिससे आगे वे स्मृतिग्रन्थों के रूप में प्रसिद्धि पाती गयीं। वेद के द्वारा प्रेरित या आदेशित कर्त्तव्य का नाम ही ' धर्म' है - '***चोदनालक्षणोऽर्थः धर्मः***' धर्म अनुभव प्रधान है। यह प्रत्यक्ष,अनुमान,उपमान व अर्थापत्ति प्रमाणों का विषय नहीं है, अतएव यह केवल शब्दप्रमाण या वेद के प्रमाण द्वारा ही जाना जा सकता है। इसलिए श्रुत्यानुसारी स्मृतियाँ ही धर्म में प्रमाण हैं, तदितर नहीं।

15.आयुर्वेद (इतिहासवेद)–

आयुर्वेद के प्राचीन ग्रंथों के अनुसार यह देवताओं की चिकित्सा पद्धति है, जिसके ज्ञान को मानव कल्याण के लिए निवेदन किए जाने पर देवताओं के वैद्य ने धरती के महान् आचार्यों को दिया। इस शास्त्र के आदि आचार्य अश्विनीकुमार माने जाते हैं, जिन्होंने दक्षप्रजापति के धड़ में बकरे का सिर जोड़ना जैसी कई चमत्कारिक चिकित्साएं की थी। अश्विनीकुमारों से इंद्र ने यह विद्या प्राप्त की। इंद्र ने धन्वंतरि को सिखाया। काशी के राजा दिवोदास धन्वंतरि के अवतार कहे गए हैं। उनसे जाकर अलग-अलग संप्रदायों के अनुसार उनके प्राचीन और पहले आचार्यों आत्रेय / सुश्रुत नेआयुर्वेद पढ़ा। अत्रि और भारद्वाज भी इस शास्त्र के प्रवर्तक माने जाते हैं। आयुर्वेद के आचार्य हैं - अश्विनीकुमार, धन्वंतरि, दिवोदास (काशिराज), नकुल, सहदेव, अर्कि, च्यवन, जनक, बुध, जावाल, जाजलि, पैल, करथ, अगस्त्य, अत्रि तथा उनके छः शिष्य (अग्निवेश, भेड़, जतुकर्ण, पराशर, सीरपाणि, हारीत), सुश्रुत और चरक।

आयुर्वेद के ऐतिहासिक ज्ञान के सन्दर्भ मेंचरक मत के अनुसारआयुर्वेद का ज्ञान सर्वप्रथम ब्रह्मा से प्रजापति ने, प्रजापति से दोनों अश्विनी कुमारों ने, उनसे इन्द्र ने और इन्द्र से भारद्वाज ने आयुर्वेद का अध्ययन किया। च्यवन ऋषि का कार्यकाल भी अश्विनी कुमारों के समकालीन माना गया है। आयुर्वेद के विकास में ऋषि च्यवन का अतिमहत्त्वपूर्ण योगदान है। फिर भारद्वाज ने आयुर्वेद के प्रभाव से दीर्घ सुखी और आरोग्य जीवन प्राप्त कर अन्य ऋषियों में उसका प्रचार किया। तदनन्तर पुनर्वसु आत्रेय ने अग्निवेश, भेल, जतू, पाराशर, हारीत और क्षारपाणि नामक छः शिष्यों को आयुर्वेद का उपदेश दिया। इन छः शिष्यों में सबसे अधिक बुद्धिमान् अग्निवेश ने सर्वप्रथम एक संहिता (अग्निवेश तंत्र) का निर्माण किया जिसका प्रतिसंस्कार बाद में चरक ने किया और उसका नाम *चरकसंहिता* पड़ा, जो आयुर्वेद का आधार-स्तम्भ है।

धन्वन्तरि ने भी आयुर्वेद का प्रकाशन ब्रह्मदेव द्वारा ही प्रतिपादित किया हुआ माना है। सुश्रुत के अनुसार काशीराज दिवोदास के रूप में अवतरित भगवान् धन्वन्तरि के पास अन्य महर्षियों के साथ सुश्रुत आयुर्वेद का अध्ययन करने हेतु गये और उनसे निवेदन किया। उस समय भगवान् धन्वन्तरि ने उन लोगों को उपदेश देते हुए कहा कि सर्वप्रथम स्वयं ब्रह्मा ने सृष्टि उत्पादन के पूर्व ही अथर्ववेद के उपवेद आयुर्वेद को एक हजार अध्यायों तथा एक लाख श्लोकों में प्रकाशित किया और पुनः मनुष्य को अल्पमेधावी समझकर इसे आठ अंगों में विभक्त कर दिया। पुनः भगवान् धन्वन्तरि ने कहा कि ब्रह्मा से दक्ष प्रजापति, उनसे दोनों अश्विनीकुमारों ने, तथा उनसे इन्द्र ने आयुर्वेद का अध्ययन किया।

16.धनुर्वेद–

धनुर्वेद यजुर्वेद का एक उपवेद है। इसके अन्तर्गत धनुर्विद्या या सैन्य विज्ञान आता है। दूसरे शब्दों मेंधनुर्वेदभारतीय सैन्य विज्ञान का दूसरा नाम है। धनुर्वेद वह शास्त्र है जिसमें धनुष चलाने की विद्या का निरूपण हो। प्राचीन काल में प्रायः सभी सभ्य देशों में इस विद्या का प्रचार था। भारत के अतिरिक्त फारस, मिस्र, यूनान, रोम आदि के प्राचीन इतिहासों और चित्रों आदि के देखने से उन सब देशों में इस

[56] *मनुस्मृति -2.10, पृ.-63*

विद्या के प्रचार का पता लगता है। भारतवर्ष में तो इस विद्या के बड़े-बड़े ग्रंथ थे, जिन्हें क्षत्रियकुमार अभ्यासपूर्वक पढ़ते थे। मधुसूदन सरस्वती ने अपने प्रस्थानभेद नामक ग्रंथ में धनुर्वेद को यजुर्वेद का उपवेद लिखा है।

वैशम्पायन द्वारा रचित *'नीतिप्रकाश' या 'नीतिप्रकाशिका'*नामक ग्रन्थ में धनुर्वेद के बारे में जानकारी है। यह ग्रंथ मद्रास में डॉ॰ आपर्ट द्वारा 1882 में सम्पादित किया गया। धनुर्वेद के अलावा इस ग्रन्थ में राजधर्मोपदेश, खड्गोत्पत्ति, मुक्तायुधनिरूपण, सेनानयन, सैन्यप्रयोग एवं राजव्यापार पर आठ अध्यायों में तक्षशिला में वैशम्पायन द्वारा जनमेजय को दिया गया शिक्षण है। इस ग्रंथ में राजशास्त्र के प्रवर्तकों का उल्लेख है।वसिष्ठ विरचित धनुर्वेदसंहिता में धनुर्वेद का प्रयोजन स्पष्ट किया गया है–

दुष्टदस्युचोरादिभ्यः साधुसंरक्षणं धर्म्मतः।प्रजापालनं धनुर्वेदस्य प्रयोजनम्॥

अर्थात्दुष्ट, दस्यु (लुटेरे), चोर आदि से धर्मपूर्वक साधुओं (सज्जनों) की रक्षा करना और प्रजा का पालन करना धनुर्वेद का उद्देश्य है।

धनुर्वेद का उल्लेख अति प्राचीन ग्रन्थों में मिलता है। अग्निपुराण में इसे ज्ञान की अठारह शाखाओं में में से एक बताया गया है, जिनकी शिक्षा भृगु द्वारा दी जाती थी। महाभारत में भी इसका उल्लेख है - ***'धनुर्वेदस्य सूत्रं च यत्र सूत्रं च नागरम्'*** शुक्रनीति में धनुर्वेद को यजुर्वेद का उपवेद बताया गया है और इसके पाँच भाग बताए गए हैं। विष्णुधर्मोत्तर में कहा गया है कि शतक्रतु (इन्द्र), धनुर्वेद के रूप हैं। सम्प्रति इस विद्या का वर्णन कुछ ग्रंथों में थोड़ा बहुत मिलता है–

शुक्रनीति,कामन्दकीनीति,अग्निपुराण,वीरचिन्तामणि,वृद्धशाङ्र्गधर, युद्धजयार्णव, युक्तिकल्पतरु, नीतिमयूख इत्यादि। धनुर्वेदसंहिता नामक एक अलग पुस्तक भी मिलती है। अग्निपुराण में ब्रह्मा और महेश्वर इस वेद के आदि प्रकटकर्ता कहे गए हैं। किन्तु मधुसूदन सरस्वती लिखते हैं कि विश्वामित्र ने जिस धनुर्वेद का प्रकाश किया था, यजुर्वेद का उपवेद वही है। उन्होंने अपने प्रस्थानभेद में विश्वामित्रकृत इस उपवेद का कुछ संक्षिप्त विवरण भी दिया है। उसमें चार पाद हैं-दीक्षापाद, संग्रहपाद, सिद्धिपाद और प्रयोगपाद। प्रथम दीक्षापाद में धनुर्लक्षण ('धनुस्' के अंतर्गत सब हथियार लिए गए हैं) और अधिकारियों का निरूपण है। आयुध चार प्रकार के कहे गए हैं- मुक्त, अमुक्त, मुक्तामुक्त, और यंत्रमुक्त। मुक्त आयुध, (जैसे चक्र) अमुक्त आयुध (जैसे- खड्ग), मुक्तामुक्त (मुक्त भी, अमुक्त भी, जैसे-भाला, बरछा)। मुक्त को 'अस्त्र' तथा अमुक्त को 'शस्त्र' कहते हैं। अधिकारी के लक्षण के बाद दीक्षा, अभिषेक, शकुन आदि का वर्णन है। संग्रहपाद में आचार्य का लक्षण तथा अस्त्र-शस्त्रादि के संग्रह का वर्णन है। तृतीयपाद में संप्रदाय, सिद्ध, विशेष-विशेष शस्त्रों के अभ्यास, मंत्र, देवता और सिद्धि आदि विषय हैं। प्रयोग नामक चतुर्थ पाद में देवाञ्चन, सिद्धि, अस्त्रशस्त्रादि के प्रयोगों का निरूपण हैं।

17.गान्धर्ववेद–

गांधर्व वेद चार उपवेदों में से एक उपवेद है।गन्धर्ववेद के अन्तर्गत भारतीय संगीत, शास्त्रीय संगीत, राग, सुर, गायन तथा वाद्य यन्त्र आते हैं। यह सामवेद का उपवेद है। भारतीय शास्त्रीय संगीत की उत्पत्ति वेदों से मानी जाती है। सामवेद में संगीत के बारे में गहराई से चर्चा की गई है। भारतीय शास्त्रीय संगीत गहराई तक आध्यात्मिकता से प्रभावित रहा है, इसलिए इसकी शुरुआत मनुष्य जीवन के अंतिम लक्ष्य मोक्ष की प्राप्ति के साधन के रूप में हुई। संगीत की महत्ता इस बात से भी स्पष्ट है कि भारतीय आचार्यों ने इसे 'पंचम वेद' या गंधर्व वेद की संज्ञा दी है। भरत मुनि का नाट्यशास्त्र पहला ऐसा ग्रंथ था जिसमें नाटक, नृत्य और संगीत के मूल सिद्धांतों का प्रतिपादन किया गया है।

18. स्थापत्यवेद (शिल्पवेद)–

संस्कृत में कहा गया है कि - ***'गृहस्थस्य क्रियास्सर्वा न सिद्धयन्ति गृहं विना।'*** वास्तुशास्त्र घर, प्रासाद, भवन अथवा मन्दिर निर्माण करने का प्राचीन भारतीय विज्ञान है, जिसे आधुनिक समय के विज्ञान*आर्किटेक्चर*का प्राचीन स्वरूप माना जा सकता है। जीवन में जिन वस्तुओं का हमारे दैनिक जीवन में

उपयोग होता है, उन वस्तुओं को किस प्रकार से रखा जाए वह भी वास्तु है। वस्तु शब्द से वास्तु का निर्माण हुआ है। यह हिंदू वास्तुकला में लागू किया जाता है।दक्षिण भारत में वास्तु की नींव परम्परागत महान् साधु मायन् को माना जाता है और उत्तर भारत में विश्वकर्मा को माना जाता है।

सन्दर्भ ग्रन्थ-सूची :-

[1]. अग्निपुराण
[2]. *ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्थ)*,गीताप्रेस गोरखपुर, बारहवाँ संस्करण, विक्रमसम्वत्- 2072
[3]. ऋग्वेद-प्रातिशाख्य
[4]. ऋग्वेदभाष्यभूमिका,आचार्य सायण
[5]. *ऋग्वेदसंहिता, प्रधान-सम्पादक- डॉ. धर्मेन्द्रकुमार, दिल्ली संस्कृत अकादमी, दिल्ली, 2013*
[6]. *कठोपनिषद्*(ईशादिनौ उपनिषद्), गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रमसम्वत्- 2072
[7]. *कौटिलीय-अर्थशास्त्रम्*, वाचस्पति गैरोला, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2015
[8]. *छान्दोग्योपनिषद्* (शाङ्करभाष्यसहित), गीताप्रेस गोरखपुर,विक्रमसम्वत् -2072
[9]. जैमिनिसूत्र
[10]. *तर्कभाषा*,केशवमिश्र, व्याख्याकार-डा□जाननशास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, संस्करण- 2015
[11]. तैत्तिरीय संहिता, भाष्य भट्टभास्कर,
[12]. *धर्म-दर्शन की रूप-रेखा*, हरेन्द्रप्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 2017
[13]. *नवीनवैदिकसञ्चयनम्*,सम्पादक एवंव्या.- डा□जमुना पाठक एवं डा□उमेश प्रसाद सिंह, चौखम्बा कृष्णदासअकादमी वाराणसी, द्वितीय संस्करण, 2010
[14]. *निरुक्तम्,यास्कमुनि*, सं. - मुकुन्दझा शर्मा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान, दिल्ली, 2016
[15]. *न्यायदर्शनम्,आचार्य गौतम*, (वात्स्यायनभाष्यसहित), व्याख्याकार- ठाकुर उदयनारायण सिंह, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली, 2015
[16]. *न्यायमञ्जरी,जयन्तभट्ट*,तृतीयभाग,संपादक-गौरीनाथ शास्त्री, सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1984
[17]. *पातञ्जलयोगदर्शनम्,महर्षि पतञ्जलि*, व्या.-सुरेशचन्द्र श्रीवास्तव, चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन वाराणसी, 2018
[18]. *पुराण-विमर्श*,आचार्य बलदेव उपाध्याय, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 2018
[19]. *प्रश्नोपनिषद्*,ईशादि नौ उपनिषद् (शाङ्करभाष्यार्थ), गीताप्रेस गोरखपुर, बारहवाँसंस्करण, विक्रमसम्वत् – 2072
[20]. *प्रस्थानभेदः, मधुसूदन सरस्वती*, व्या. - डॉ. कमलनयन शर्मा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
[21]. *बृहदारण्यकोपनिषद्(शाङ्करभाष्यसहित)*,गीताप्रेस, गोरखपुर, विक्रमसम्वत् – 2074
[22]. बृहद्देवता
[23]. *ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्यम्,शंकराचार्य,(भामती-कल्पतरू-परिमलटीकासहितम्)*, संपादक- के. एल. जोशी, परिमल पब्लिकेशन्स, दिल्ली, 1996
[24]. ब्रह्माण्डपुराण
[25]. *भारतीय दर्शन एवं आचार्य परम्परा*, उर्मिला सिंह एवं सीताशरण सिंह, बिहार हिन्दी ग्रन्थ अकादमी पटना, 2018
[26]. *भारतीय दर्शन का इतिहास*, डॉ. एस.एन.दासगुप्त, राजस्थान हिन्दी ग्रन्थ अकादमी जयपुर, 1973
[27]. *भारतीय दर्शन की रूप-रेखा*, हरेन्द्र प्रसाद सिन्हा, मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली, 2016
[28]. *भारतीय दर्शन*, उमेश मिश्र, उत्तरप्रदेश हिन्दी संस्थान लखनऊ, पंचम संस्करण, 2003
[29]. मत्स्यपुराण
[30]. *मनुस्मृतिः*, व्या. -गिरिधर गोपाल शर्मा, चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान दिल्ली,2014
[31]. *महाभाष्य(प्रथम-पस्पशाह्निक)*,व्या.- प्रो. जयशंकरलाल त्रिपाठी,चौखम्बा कृष्णदास अकादमी,वाराणसी,2013

[32]. *मीमांसा दर्शन का विवेचनात्मक इतिहास,* गजानन शास्त्री मुसलगाँवकर, चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, 1992

[33]. *मीमांसाशाबरभाष्य,शबरस्वामी,* सं एवंअनु. युधिष्ठिर मीमांसक, रामलाल कपूर ट्रस्ट, बहालगढ़ (सोनीपत-हरियाणा), 1987

[34]. *याज्ञवल्क्यस्मृति,*

[35]. *लिङ्गपुराण,व्यास,* सं. - आचार्यजगदीश शास्त्री, मोतीलाल बनारसीदास, दिल्ली, 1980

[36]. वेदांग ज्योतिष,लगधाचार्य

[37]. *वैदिक दर्शन,*आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वभारती अनुसंधान परिषद्, ज्ञानपुर (भदोही),2006

[38]. *वैदिक साहित्य एवं संस्कृति,* आचार्य कपिलदेव द्विवेदी, विश्वविद्यालय प्रकाशन वाराणसी,2015

[39]. *वैदिक साहित्य और संस्कृति,* आचार्य बलदेव उपाध्याय, शारदा संस्थान वाराणसी, 2010

[40]. *शास्त्रदीपिका,पार्थसारथिमिश्र,* सं.एवं अनु. किशोरदास स्वामी, स्वामी रामतीर्थ मिशन, देहरादून, 1996

[41]. *श्रीमद्भगवद्गीता (शाङ्करभाष्य सहित),*गीताप्रेस गोरखपुर, विक्रम सम्वत् - 2074

[42]. *श्वेताश्वतरोपनिषद्, ईशादि नौ उपनिषद्(शाङ्करभाष्यार्थ),*गीताप्रेस गोरखपुर, बारहवाँ संस्करण, विक्रमसम्वत् 2072

[43]. *श्वेताश्वतरोपनिषद्, ईशादि नौ उपनिषद्(शाङ्करभाष्यार्थ),*गीताप्रेस गोरखपुर, बारहवाँ संस्करण, विक्रमसम्वत् 2072

[44]. *संस्कृत-हिन्दी कोश,* वामन शिवरामआप्टे, मोतीलाल बनारसीदास पब्लिशर्स, दिल्ली, 2012

[45]. *सर्वदर्शनसंग्रह,आचार्य माधव,* भाष्यकार- उमाशङ्करशर्मा ऋषि, चौखम्बा विद्याभवन वाराणसी, 2014

[46]. सर्वानुक्रमणी

[47]. *स्कन्दपुराण, व्यास,* सं.- नागसरणसिंह, नाग पब्लिशर्स, दिल्ली, 1982

[48]. *A Sanskrit-English Dictionary,* M. Monier Williams, Motilal Banarasidass Publishers Private Limited Delhi, Corrected Edition- 2002